

इकाई 7 रस की परिभाषा, स्वरूप और रस निष्पत्ति

इकाई की रूपरेखा

- 7.0 उद्देश्य
- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 'रस' शब्द का अर्थ तथा रस-चिंतन की परंपरा
- 7.3 रस की परिभाषा
- 7.4 रस का स्वरूप
- 7.5 करुण रस का आस्वाद
- 7.6 रस की निष्पत्ति
 - 7.6.1 भट्ट लोल्लट का उत्पत्तिवाद या आरोपवाद
 - 7.6.2 शंकुक का अनुभूतिवाद
 - 7.6.3 भट्टनायक का भोगवाद
 - 7.6.4 अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद
 - 7.6.5 अभिनवगुप्त के मत का महत्व
- 7.7 रस सिद्धांत की शक्ति और सीमाएँ
- 7.8 शब्दावली
- 7.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- बता सकेंगे कि रस शब्द से क्या तात्पर्य है तथा इसके विषय में चिंतन की क्या परंपरा रही है,
- रस की परिभाषा दे सकेंगे,
- रस का स्वरूप बता सकेंगे तथा स्पष्ट कर सकेंगे कि करुण रस का आस्वाद किस तरह होता है,
- रस निष्पत्ति की प्रक्रिया संबंधी विभिन्न मतों का परिचय दे सकेंगे,
- रस सिद्धांत की शक्ति और सीमाओं की चर्चा कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आपने भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न संप्रदायों का अध्ययन किया और यह जानकारी प्राप्त की कि साहित्य के मूल्यांकन के लिए संस्कृत के आचार्यों ने विभिन्न पहलुओं से विचार किया है। एक वर्ग रस को अधिक महत्व देता है तो दूसरा अलंकार को, तीसरा वक्रोक्ति को तो चौथा ध्वनि को। इन विभिन्न दृष्टियों अथवा साहित्य चिंतन के संप्रदायों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रस संप्रदाय का रहा है। अतः रस संबंधी विवेचन को विस्तार से समझना आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में आप रस संबंधी चिंतन के विविध पक्षों का विस्तृत परिचय प्राप्त करेंगे।

भारतीय काव्यशास्त्र में रस चिंतन, सौंदर्य चिंतन का मूल आधार है। सौंदर्य के आस्वादन में निहित आनंद को प्रधानता देते हुए रस चिंतन का विकास हुआ। सौंदर्य में निहित अद्भुत तत्व की व्याख्या के लिए अलंकार संप्रदाय, वक्रोक्ति संप्रदाय आदि सामने आए। किंतु कालक्रम की दृष्टि से नहीं व्यापक प्रभाव की दृष्टि से भी रस सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी रहा है।

7.2 'रस' शब्द का अर्थ तथा रस-चिंतन की परंपरा

'रस' भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम शब्दों में से एक है। सामान्यतः रस शब्द का चार अर्थों में प्रयोग होता है - (1) पदार्थ का रस, जैसे अम्ल तिक्त आदि, (2) आयुर्वेद का रस, (3) साहित्य का रस, और (4) मोक्ष या भक्ति का रस।

प्राकृतिक रस में रस शब्द का अर्थ है किसी वनस्पति को निचोड़ कर निकाला हुआ द्रव, अर्थात् पदार्थ सार जिसका आस्वादन किया जा सकता है। आयुर्वेद में रस का अर्थ है पारदा। यहाँ पदार्थ के सार का अर्थ तो निहित है ही किंतु महत्व उसके आस्वाद का नहीं बल्कि गुण का माना जाता है। तीसरा प्रयोग

है साहित्य का रस। यहाँ रस का अर्थ है (1) काव्य का आस्वाद, (2) काव्य का सौंदर्य, (3) काव्य का आनंद। मोक्ष या भक्ति का रस आत्मा के आनंद या ब्रह्मानंद का वाचक है। इस प्रकार रस के सभी अर्थों में भोग या आस्वाद का भाव अंतर्निहित है।

ऊपर चर्चा की जा चुकी है कि रस का पहला अर्थ है पदार्थों का सारभूत द्रव। वैदिक युग में वनस्पतियों के रस का प्रयोग मिलता है वहाँ यजमान (यज्ञ करने वाला व्यक्ति) अपने देवता को द्रव्य (हवन में प्रस्तुत की जाने वाली वस्तु) के रूप में रस प्रस्तुत करता है। इसके अलावा रस शब्द का प्रयोग दूध और जल के अर्थ में भी मिलता है। किंतु इस युग में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है सोमरस के रूप में रस का प्रयोग। सोमरस के संदर्भ में रस के प्रयोग से ही आस्वाद रूप में रस का अर्थ विकास हुआ।

उपनिषद में रस का प्रयोग आस्वाद और आह्लाद के संदर्भों में मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद में आता है - औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न हुआ। यह शरीर अन्न के रस से बना है। यहाँ रस का प्रयोग केवल द्रव्य नहीं है देह धातु और शक्ति का वाचक है। यह अर्थ आयुर्वेद के रस के पर्याप्त निकट है। यहीं पर रस को दर्शन में प्रवेश मिला और कहा गया वह (ब्रह्म) सर्व गंध और सर्व रस है। धीरे-धीरे रस की भौतिक और आध्यात्मिक सीमाएँ मिल गईं और यह प्रसिद्ध हो गया - 'रसो वै सः' (तैत्तिरीय उपनिषद) अर्थात् वह (ब्रह्म) रस रूप है। उसे प्राप्त कर मनुष्य आनंदमय हो जाता है।

रस का मूल अर्थ था अन्न का रस या वनस्पतियों का रस, सोमरस। सोमरस में आस्वाद के साथ एक प्रकार का आनंद और तन्मयता दोनों की अर्थ ध्वनि है। इस प्रकार रस का अर्थ अन्न रस से ब्रह्म रस तक की यात्रा पूरी करता है। काव्य रस के शास्त्रीय अर्थ में रस का प्रयोग वैदिक वाङ्मय में नहीं मिलता है। कभी-कभार वाणी के लिए मधु के समान देखने वाली विशेषण का प्रयोग मिलता है।

इस प्रकार वैदिक युग में ही रस शब्द का प्रयोग वाक्, वाणी या शब्दार्थ के लिए होने लगा था। रामायण, महाभारत काल में आकर नवरस का उल्लेख मिलने लगता है। बाल्मीकि रामायण के बालकांड के चतुर्थ सर्ग में नवरस का स्पष्ट उल्लेख है किंतु डॉ. नगेन्द्र का मत है कि बालकांड का यह अंश जिसमें रस की चर्चा है निश्चय ही प्रक्षिप्त है। 'रस सिद्धांत' में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि रामायण में रस का प्रयोग जीवन-रस या पेय के साधारण अर्थ में ही मिलता है। महाभारत में भी रस जल, पेय, गंध अथवा सुरा का ही पर्याय है। एक-दो प्रयोग नए हैं जैसे रस का काम और स्नेह के अर्थ में प्रयोग।

महाभारत काल के बाद का समय दर्शन सूत्रों की रचना तथा बौद्ध एवं जैन दर्शनों के आविर्भाव का युग है लेकिन इसी युग में वैयाकरण पाणिनि का 'अष्टाध्यायी' कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' और वात्स्यायन का 'कामसूत्र' लिखा गया। वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में रस शब्द का प्रयोग रति अथवा काम के अर्थ में किया है। निश्चय ही वात्स्यायन के युग में रस शब्द के शास्त्रीय अर्थ का आविर्भाव हुआ। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' की रचना ई.पू. चौथी शती के लगभग हुई। 'कामसूत्र' इस युग के पूर्वार्द्ध की रचना है और 'भरतसूत्र' (नाट्यशास्त्र) उत्तरार्द्ध की। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में रस की इतने विस्तार और गहराई से चर्चा है कि रस की शास्त्रीय परंपरा को भरत से लगभग दो शताब्दी पहले तक ले जाना आवश्यक है। भरत ने अपने पूर्ववर्ती रस चिंतकों का उल्लेख किया है किंतु उनका कोई ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है।

रस सिद्धांत का प्रतिपादक प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' ही है। 'नाट्यशास्त्र' में नाटक के संदर्भ में 'रस' का विस्तार से विवेचन मिलता है। 'नाट्यशास्त्र' के बारे में अधिकांश विद्वानों का मत है कि यह छठी शताब्दी ईसा पूर्व से पहले की रचना नहीं है। भरत ने नाटक को ही साहित्य का सर्वश्रेष्ठ रूप माना है और कहा है कि नाटक का प्राण है रस। कोई भी नाटक का अंग रस के बिना शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता या रस के बिना कोई अन्य अर्थ प्रवृत्त नहीं हो सकता। नाट्य सिद्धि के लिए भरत ने सूत्रधार तथा प्रेक्षक दोनों की दृष्टि से भाव तथा रस को मुख्य माना है। नाटक के निर्माण करने वाले तत्वों में भरत रस-भावादि को प्रधानता देते हैं। वे कहते हैं नाटक इस समस्त त्रैलोक्य के भावों का अनुकीर्तन करता है। एक जगह उनका कथन है - 'मैंने जिस नाट्य का निर्माण किया है वह नाना प्रकार के भावों से समन्वित है। इसमें विविध प्रकार की अवस्थाएँ हैं और यह लोक चरित का अनुकरण करता है।' नाट्य के चार प्रमुख अंग हैं - (1) वस्तु तत्व (2) अभिनय (3) संगीत; और (4) रस। पहले तीनों अंगों का नियंता रस है।

भरत के उपरांत रस-सिद्धांत अधिक लोकप्रिय नहीं रहा। आगे आने वाले आचार्यों ने अलंकार और रीति को काव्य की आत्मा घोषित किया। रस-सिद्धांत के पहले विरोधी आचार्य भामह थे। उन्होंने रस का अलंकार में अंतर्भाव कर लिया। दंडी ने भी रस को अलंकारों के अंतर्गत स्थान दिया। रीतिवादी आचार्य वामन ने रस को कांतिगुण का मूल तत्व मानते हुए उसकी प्रतिष्ठा को थोड़ा बढ़ाया। भामह से लेकर रूद्रट तक अलंकार और रीति की प्रधानता रही और रस का स्थान गौण रहा।

लेकिन उस समय के दोनों प्रसिद्ध कवियों - कालिदास और भवभूति ने अपने समकालीन आलोचकों का विरोध करते हुए रस की प्रतिष्ठा की। कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में 'त्रैगुण्योद्भवमत्रलोकचरितम् नाना रसम् दृश्यते' कहकर रस की प्रतिष्ठा की। भवभूति ने करुण रस को ही एक मात्र रस घोषित किया। पीछे से आनंदवर्धन ने ध्वनि सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उन्होंने ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते हुए रस सिद्धांत को असीम विस्तार प्रदान कर दिया। इस प्रकार ध्वनि को रस का विरोधी न मानकर उसका व्यापक रूप मानना ही उचित है। 'ध्वन्यालोक' (आनंदवर्धन) के उपरांत अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोकलोचन की रचना की और रस संबंधी अनेक भ्रांतियों का निराकरण करते हुए रस की प्रतिष्ठा की। परवर्ती आचार्यों में भोजराज के 'शृंगार प्रकाश' मम्मट के 'काव्य प्रकाश' और विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' का नाम रस-सिद्धांत की परंपरा में विशेष उल्लेखनीय है। विश्वनाथ ने सत्वोद्रेक को रस का हेतु बताया और रस को अखंड, लोकोत्तर, चमत्कारप्राण कहा।

रस चिंतन की यही परंपरा हिंदी साहित्य को प्राप्त हुई। हिंदी में रस चिंतन को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'रस मीमांसा' और डॉ. नगेन्द्र ने 'रस-सिद्धांत' में विशेष रूप से व्याख्यायित-विश्लेषित किया। छायावाद युग तक रस सिद्धांत की चर्चा निर्भ्रांत होती रही। छायावादोत्तर युग में उसका विरोध हुआ विशेषकर नयी कविता के युग में कट्टर गया कि रस का संबंध चित्त की विश्रांति और अद्वंद्व से है जबकि नयी कविता का आधार है द्वंद्व, तनाव, संघर्ष तथा विक्षोभ। इस प्रकार नयी कविता युग में रस को काव्य के प्रतिमान के रूप अस्वीकार कर दिया गया।

7.3 रस की परिभाषा

रस की व्याख्या करने वाला भरत मुनि का यह प्रसिद्ध सूत्र है - 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस-निष्पत्ति'। अर्थात् विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी (संचारी भाव) के साथ जब स्थायी भाव का संयोग होता है तब रस की निष्पत्ति होती है। स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव - ये चारों रस के अंग कहलाते हैं (इनकी विस्तृत चर्चा के लिए देखिए इकाई-5)। भरत ने अपने रस संबंधी मंतव्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है -

जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुड़ादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से 'षाडवादि' रस बनते हैं उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव भी रस रूप को प्राप्त होते हैं।

यहाँ यह सहज प्रश्न उठता है कि रस कौन सा पदार्थ है अथवा रस को रस क्यों कहा जाता है? इसका उत्तर है जो आस्वाद्य हो वह रस है। जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों से पके हुए अन्न का उपभोग करते हुए 'सुमनस व्यक्ति' (स्वस्थ चित्त वाले व्यक्ति) रसों का आस्वादन करते हैं उसी प्रकार प्रेक्षक (नाटक के दर्शक) विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित - आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य अभिनयों से संयुक्त - स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार भरत रस की लौकिक संदर्भों में व्याख्या करते हैं। उनके कथन का सारांश है -

- (1) रस अनुभूति का विषय है
- (2) विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव से संयुक्त एवं विविध अभिनयों द्वारा व्यंजित स्थायी भाव ही रस या नाट्य रस में परिणत हो जाता है।
- (3) स्थायी भाव रस नहीं है किंतु रस का आधार है क्योंकि नाट्य सामग्री से संयुक्त होकर वही रस बन जाता है। उदाहरण के लिए रति स्थायी भाव अपने मूल रूप में शृंगार रस नहीं है परंतु नायक नायिका के सुख-दुख आदि के प्रसंग में विविध अभिनयों के द्वारा जब वह रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है तो शृंगार रस के रूप में परिणत हो जाता है।
- (4) यहाँ स्थायी भाव से अभिप्राय कवि या सहृदय के स्थायी भाव का न होकर नायक के स्थायी भाव का है क्योंकि नायक ही लोक का प्रतिनिधि है।

- (5) रस कला का आस्वाद नहीं है कलात्मक स्थिति है।
- (6) सद्बुद्धय इसका आस्वादन करता है और उसका आस्वादन हर्षादि रूप ही होता है। हर्षादि के दो अर्थ किए जाते हैं - एक तो यह कि रसास्वाद केवल आनन्दमय ही नहीं होता। विभिन्न स्थायी भावों के अनुसार विभिन्न प्रकार का होता है। दूसरा यह कि भरत ने कटु अनुभूतियों की व्यंजना की ओर संकेत नहीं किया रामचंद्र गुणचंद्र ने रस को सुख-दुख रूप माना है।

इस प्रकार भरत के अनुसार नाना भावों से संपन्न स्थायी भाव ही रस है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि नाट्य सौंदर्य और काव्य सौंदर्य के माध्यम से स्थायी भाव की उपस्थिति ही रस है। भरत सूत्र के अन्य व्याख्याकार आचार्यों ने, प्रमुख रूप से अभिनवगुप्त ने शैवाद्वैत सिद्धांत के आधार पर कहा कि रस का अर्थ है आनंद और यह आनंद विषयगत न होकर आत्मगत ही होता है। विषय तो आत्मास्वाद का माध्यम मात्र है जिसके द्वारा प्रेक्षक या सामाजिक या सद्बुद्धय 'संविद विश्रांति' को प्राप्त होता है। इस दृष्टि में रस के आनंद से इतर रूप की कल्पना नहीं है। संस्कृत काव्यशास्त्र में रस का सामान्य अर्थ है काव्य-सौंदर्य। इस प्रकार रस के तीन अर्थ हुए - (1) रस भाव की कलात्मक अभिव्यंजना है (2) रस भावमूलक काव्य सौंदर्य की अनुभूति है (3) पूरा काव्य सौंदर्य सामान्य अर्थ में रस ही है।

प्रश्न उठता है कि रस एक आनंदमयी चेतना तो है परंतु यह जाग्रत किस में होती है और किस प्रकार होती है। आनंदमयी चेतना और अन्य प्रकार की चेतना में क्या अंतर है। रस का स्वरूप क्या है? अतः यहाँ सर्वप्रथम रस के स्वरूप पर विचार करना अपेक्षित है।

7.4 रस का स्वरूप

संस्कृत आचार्यों ने रस की जिन विशेषताओं का समय-समय पर उल्लेख किया है रस विषयक उन सभी विशेषताओं का सारांश आचार्य विश्वनाथ (14वीं शताब्दी) ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्द चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरघमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रभातुभिः।
स्वकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।

(साहित्यदर्पण)

यहाँ सत्त्वोद्रेक रस का हेतु या कारण है तथा अखंड स्वप्रकाशानंद चिन्मय आदि पदों के द्वारा रस के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। संस्कृत रसशास्त्र में रस के प्रधान लक्षण इस प्रकार हैं -

- (1) जिसका आस्वादन हो वह रस है ('रस्यते इति रसः' या 'आस्वाद्यते इति रसः')। रस सद्बुद्धय संवेद्य है अर्थात् सद्बुद्धय ही रस का आस्वादन करता है।
- (2) अनिवार्यतः यह आस्वाद आनंदमय है और इस आनंद की तीन विशेषताएँ हैं अखंडता, चिन्मयता और वेद्यान्तर स्पर्शशून्यता। 'अखंड' का यहाँ अर्थ है विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव, संचारी भाव आदि की खंड-खंड चेतना नहीं होती सभी की अखंड चेतना होती है। दूसरी विशेष बात यह कि उस समय किसी अन्य विषय की चेतना नहीं होती यही 'वेद्यान्तरस्पर्शशून्य' अनुभूति है। 'चिन्मय' का अर्थ है यह अनुभूति बुद्धि मृण्मय न होकर विलक्षण आनंद की अनुभूति होती है।
- (3) रस का आविर्भाव सत्त्व के उद्रेक होने पर ही होता है। रजोगुण और तमोगुण से रहित अंतःकरण को सत्त्व कहते हैं। सामान्य शब्दावली में कह सकते हैं - सांसारिक रागद्वेष से मुक्त चित्त की विशदता ही सत्त्वोगुण की स्थिति। यह आस्वाद ऐंद्रिय चेतना से भिन्न होने के कारण अत्यंत परिष्कृत कोटि का या उदात्त कोटि का होता है।
- (4) रसानुभव अन्य ज्ञान के अनुभव से रहित है। रस पूर्ण तन्मयता की स्थिति है। आज के संदर्भ में इसका अर्थ हुआ रस की स्थिति में सद्बुद्धय स्व-पर की भावना से मुक्त हो जाता है देशकाल के बंधन से ऊपर उठ जाता है और स्थिति या प्रसंग से पूर्ण तादात्म्य का अनुभव करता है। यही स्थिति साधारणीकरण कहलाती है।
- (5) रस स्वप्रकाशानंद है और चिन्मय भी, अर्थात् रसानुभूति आत्म-चैतन्य से प्रकाशित आनंदमयी चेतना है। इस आनंदमयी चेतना में मृण्मय अर्थात् घोर ऐंद्रिय अनुभूति का अभाव रहता है और

चेतन्य आत्मास्वाद का योग। इस तरह रस ऐंद्रिय सुख की अनुभूति मात्र नहीं है वह एक प्रकार का परिष्कृत आनंद है।

रस की परिभाषा, स्वरूप और रस निष्पत्ति

- (6) रस 'लोकोत्तर चमत्कार प्राण' है। रस ऐसी चेतना है जिसमें ज्ञाता की चेतना विलीन हो जाती है। यह एक अलौकिक, अनिर्वचनीय स्थिति है। आधुनिक शब्दावली में अलौकिक काफ़ी विवादास्पद शब्द है और अलौकिक को लेकर ही आधुनिक विचारकों ने रस सिद्धांत पर आक्षेप किए हैं। उनका कहना है कि काव्य लोक की वस्तु है लौकिक अनुभवों पर आधारित होती है। ऐसी स्थिति के कारण उसके आस्वाद को अलौकिक कहना कहाँ तक उचित है। लौकिक का अर्थ न अतींद्रिय है, न अतिप्राकृतिक, न आध्यात्मिक। अलौकिक अनुभूति का अर्थ है - ऐसी अनुभूति जो मात्र लौकिक न होकर लोकोत्तर हो, अर्थात् परिष्कृत अनुभूति।
- (7) रस ब्रह्मास्वाद सहोदर है। सहोदर का अर्थ है सगाभाई अर्थात् रस ब्रह्मास्वाद (ईश्वरीय आनंद) का सगाभाई या ब्रह्मास्वाद के समान है। ब्रह्मास्वाद सहोदर का दूसरा विशिष्ट अर्थ है - रस विषयानंद से भिन्न चिन्मय अनुभव है। रस शुद्ध आत्मानंद या ब्रह्मास्वाद नहीं है क्योंकि ब्रह्मास्वाद स्थायी होता है, रस अस्थायी स्थिति है। इसके अलावा रस लौकिक स्थितियों का पूरी तरह लोप नहीं होता। मूल बात यह कि काव्यानंद और ब्रह्मास्वाद में बुनियादी अंतर है यह अंतर प्रकृति का नहीं गुण का है। अपने मूल में काव्यानंद और ब्रह्मास्वाद दोनों आत्मानंद के ही भेद हैं। सारांश यह है कि रस काव्य का आस्वाद है और यह आस्वाद एक प्रकार की आनंद चेतना है। आत्म-चेतना का अर्थ है आत्म साक्षात्कार का आनंद।

संस्कृत काव्यशास्त्र में रस के स्वरूप विषयक चर्चा पर पुनर्विचार करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने रस के स्वरूप के विषय में तीन प्रश्न उठाए हैं और उनके समाधान का प्रयास किया है - (1) भावानुभूति और रसानुभूति का क्या संबंध है? (2) क्या रसानुभूति अनिवार्यतः आनंदमयी चेतना है? (3) यदि है तो इस आनंद का स्वरूप क्या है?

डॉ. नगेन्द्र के मत से प्रथम प्रश्न का उत्तर है रसानुभूति भावानुभूति से भिन्न है। भावानुभूति में व्यक्तिगत रागद्वेष का संसर्ग बना रहता है किंतु रसानुभूति व्यक्तिगत रागद्वेष के संसर्ग से मुक्त होती है। इस अनुभूति को ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'कविता क्या है' निबंध में 'हृदय की मुक्तावस्था' कहा है। दूसरे प्रश्न का उत्तर है कि रस अनिवार्यतः आनंदमय होता है। इस विषय में मतभेद है शृंगार, वीर, हास्य और शांत का आस्वाद तो आनंदमय होता है किंतु करुण, भयानक, वीभत्स का आस्वाद भी आनंदमय होता है यह विवाद का विषय है। तीसरे प्रश्न का उत्तर है रस में 'हर्षादि' पद के आधार पर विद्वान यह कहते हैं कि रस का आस्वाद केवल आनंद रूप नहीं है स्थायी भाव के आस्वाद के आधार पर वह विपरीत भी हो सकता है। जैन आचार्य रामचन्द्र, गुणचन्द्र ने स्पष्ट कहा है कि रस सुखात्मक तथा दुःखात्मक दोनों प्रकार के होते हैं। रौद्र, वीभत्स, करुण और भयानक यह चार उनके मत से दुःखात्मक रस हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में 'रस अनिवार्यतः आनंदमयी चेतना है' का इतना स्पष्ट विरोध रामचन्द्र गुणचन्द्र करते हैं। (रस-सिद्धांत)

संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा ही आधुनिक भारतीय भाषाओं में आती है। जयशंकर प्रसाद 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' नामक पुस्तक में रस को आनंदमयी चेतना मानते हैं। आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू गुलाबराय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सभी रस को आनंद स्वरूप ही मानते हैं किंतु इस परंपरा में रामचन्द्र शुक्ल एक ऐसे आचार्य हैं जो रस के समर्थ पोषक होते हुए भी रस की आनंदरूपता का स्पष्ट विरोध करते हैं - 'मेरी समझ में रसास्वादन का प्रकृत स्वरूप 'आनंद' शब्द से व्यक्त नहीं होता। 'लोकोत्तर', 'अनिर्वचनीय' आदि विशेषणों से न तो उसके अवाचकत्व का परिहार होता है न प्रयोग का प्रायश्चित। क्या क्रोध, शोक, जुगुप्सा आदि आनंद का रूप धारण करके ही श्रोता के हृदय में प्रगट होते हैं? अपने प्रकृत रूप का सर्वथा विसर्जन कर देते हैं? उसे कुछ भी लगा नहीं रहने देते? क्या 'विभावत्व' उनका स्वरूप हर कर उन्हें एक ही स्वरूप-सुख का दे देता है? क्या मृत पुत्र के लिए विलाप करती हुई शैब्या से राजा हरिश्चन्द्र का कफन माँगना देख सुनकर आँसू नहीं आ जाते, दौत निकल पड़ते हैं? क्या महमूद के अत्याचारों का वर्णन पढ़कर यह जी में नहीं आता कि वह सामने आता तो उसे कच्चा खा जाते? क्या कोई दुःखांत कथा पढ़कर बहुत देर तक उसकी खिन्नता नहीं बनी रहती? चित्त का यह द्रुत होना क्या आनंदगत है? इस 'आनंद' शब्द ने काव्य के महत्व को बहुत कुछ कम कर दिया है। उसे नाच तमाशे की तरह बना दिया है।' ('रस मीमांसा', पृ. 101) इस प्रकार आचार्य शुक्ल के मत से रस आनंद स्वरूप नहीं है।

हिंदी काव्यशास्त्र में डॉ. नगेन्द्र ने 'रस सिद्धांत' नामक पुस्तक में रसानंद के स्वरूप का प्रतिपादन किया है। उन्होंने 'रीतिकार्य की भूमिका' में लिखा है - 'वास्तव में संवेदना न अपने आप में कटु है और न मधुर। कटुता और मधुरता तो अनुभूति का गुण है। अनुभूति में एक पृथक संवेदन नहीं होता, संवेदनों का एक विधान होता है। जब संवेदनों में सामंजस्य और अन्विति स्थापित हो जाती है तो हमारी अनुभूति मधुर होती है, और जब ये विश्रुंखल और विकीर्ण होते हैं तो अनुभूति कटु होती है। काव्य से प्राप्त संवेदन प्रत्यक्ष न होकर सूक्ष्म बिंब-रूप होते हैं। एक तो इसी कारण उनकी कटुता अत्यंत क्षीण हो जाती है। दूसरे वे कवि द्वारा भावित होते हैं इसलिए अनिवार्यतः उनमें सामंजस्य स्थापित हो जाता है क्योंकि काव्य के भावन का अर्थ ही अव्यवस्था में व्यवस्था स्थापित करना है और अव्यवस्था में व्यवस्था ही आनंद है। इस प्रकार जीवन के कटु अनुभव भी काव्य में अपने तत्त्व रूप में संवेदन के समन्वित हो जाने से आनंदप्रद बन जाते हैं।'

इस प्रकार रस न सुखात्मक है न दुःखात्मक। रसदशा हृदय की मुक्तावस्था का नाम है जिसमें वैयक्तिक रागद्वेष का सर्वथा शमन हो जाता है। रस सरल अनुभूति नहीं है। उसमें अनेक परस्पर विरोधी अंतर्वृत्तियों का घुलन-मिलन-संतुलन रहता है। अतः वह जीवन का वैविध्यपूर्ण अनुभव है।

7.5 करुण रस का आस्वाद

रस अनिवार्यतः आनंदरूप होता है अथवा दुःखात्मक अनुभव है यह प्रश्न स्वभावतः सामने आता रहा है। भारतीय काव्यशास्त्र का अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न है करुणादि रसों का आस्वाद आनंदप्रद कैसे हो सकता है? यह सच है कि यह प्रश्न भारतीय आचार्यों के लिए अधिक विवाद का विषय नहीं रहा फिर भी इसके विषय में वे अपने ढंग से सजग अवश्य रहे हैं। काव्य रस अलौकिक या लोकोत्तर होता है अतः लौकिक कार्यकारण संबंध उसके लिए अनिवार्य नहीं है। दुःख से दुःख की उत्पत्ति तो लौकिक नियम है, किंतु कवि प्रतिभा के स्पर्श से काव्य में दुःख से सुख की उत्पत्ति सहज संभव है। प्रतिभा का यही चमत्कार अलौकिकता है। आचार्य पंडितराज जगन्नाथ ने कहा है - 'यह अलौकिक व्यापार (व्यंजना) की महिमा है उसके द्वारा अभिव्यक्त अरमणीय शोकादि पदार्थ भी अलौकिक आनंद को उत्पन्न करने लगते हैं।' (रस गंगाधर)।

रस की अलौकिकता का अर्थ ही है लौकिक संबंध भावना से मुक्त हो जाना। देश-विदेश में काव्य को दैवी प्रेरणा या दैवी शक्तियों से विभूषित माना जाता रहा है। काव्यगत प्रतिभा सामान्य मानव प्रतिभा से अलग है इसलिए काव्यगत स्थायी भाव का अनुभव लौकिक शोक के अनुभव से भिन्न है।

लेकिन संस्कृत काव्यशास्त्र में भट्टनायक जैसे आचार्य भी हैं जो यह तर्क उपस्थित करते रहे हैं कि यदि रस की सामाजिक द्वारा प्रतीति मानी जाए तो करुण रस में दुःख की अनुभूति स्वीकार करनी होगी। काव्य में भावकत्व का अर्थ है शब्दार्थ को दोषमुक्त तथा गुणालंकार युक्त करने वाला व्यापार अर्थात् काव्य कौशल। यह व्यापार अभिधा द्वारा वाच्यार्थ का बोध हो जाने के उपरांत आरंभ होता है। इसके दो कार्य हैं - (1) पाठक की चेतना को निविड निज मोह संकट से मुक्त करना (2) विभावादि का साधारणीकरण करना। काव्यास्वादन के समय पाठक लोकानुभव की भाँति शोकादि स्थायी भावों की दुःखमय प्रतीति नहीं करता। अतः करुण रस का आस्वाद दुःखमय नहीं होता। रस की न तो उत्पत्ति या प्रतीति होती है और न लौकिक भोग। रस तो एक प्रकार का आत्मास्वाद है और इस आत्मास्वाद में सुख या दुःख का प्रवेश नहीं है क्योंकि आत्मा आनंद रूप है अतः करुण रस में व्यक्तिबद्ध शोक की प्रतीति नहीं होती अपितु साधारणीकृत आत्मा का सहज आनंद रूप मिलता है। रसवादियों में एक तर्क शारदातनय का है जो यह मानते हैं कि यह संसार दुःख मोहादि से कलुषित है और जीवात्मा अपने राग, विद्या और कला, इन तीन तत्त्वों के द्वारा उसका भोग करता है।

इनमें राग सुखत्व का अभिमान है, विद्या के द्वारा अविद्या से आच्छन्न (ढके हुए) चैतन्य का ज्ञान अभिव्यक्त होता है और कला आत्मा को प्रदीप्त करने वाला कारण है। इसी न्याय से प्रेक्षक शोक, भय, ज्ञान आदि से निष्पन्न करुण, भयानक वीभत्स आदि रसों का अपने आत्मस्थ तीन तत्त्वों - राग, विद्या या कला के द्वारा चर्चण या भोग करता है।

मूल अर्थ यह है कि काव्य का शोक व्यक्तिगत न रहकर साधारणीकृत हो जाता है। 'उत्तर रामचरितम्' में राम की उदात्त कर्तव्य भावना उनके व्यक्तिगत दुःख को विशेष गरिमा से मंडित कर देती है। यहाँ

पाठक या प्रेक्षक जीवन के गहनतर अर्थों का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार जीवन के कटु अनुभव अपने आधारभूत संवेदनों के समन्वित हो जाने से आनंद की ही अनुभूति कराते हैं। पश्चिम में अरस्तू के विरेचन सिद्धांत पर भी विद्वानों ने निरंतर बहस की है और अंत में यह निष्कर्ष निकाला है कि त्रासदी का अनुभव भी अंततः आनंद में परिणत हो जाता है।

रस की परिभाषा, स्वरूप और रस निष्पत्ति

7.6 रस की निष्पत्ति

भरतमुनि के प्रसिद्ध सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति' में 'निष्पत्ति' शब्द का शब्दार्थ है - प्रकाशन, उत्पत्ति अथवा परिपक्वता। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य की सौंदर्यानुभूति के समकक्ष रस निष्पत्ति शब्द को स्वीकृति मिली है। वस्तुतः काव्यानुभूति, काव्यानंद आदि शब्द एक प्रकार से रस-निष्पत्ति के ही समानार्थी हैं। भरत के सूत्र में निष्पत्ति और संयोग प्रमुख शब्द रहे हैं और परवर्ती आचार्यों ने इन शब्दों की व्याख्या अपने-अपने मत के अनुसार की है। भरत के शब्दों में विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। भरत ने छह प्रकार के विभिन्न स्वादों वाली वस्तुओं के मेल से बने आपानक से इसकी तुलना करके समझाने का प्रयत्न किया है और आस्वाद्य होने को कारण इसे रस माना है। आगे चलकर भरत ने स्थायी भाव के आस्वादन को रस निष्पत्ति के रूप में ग्रहण किया। भाव और रस के संबंध पर विचार करके भी वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि रस और भाव एक-दूसरे पर आश्रित हैं।

7.6.1 भट्ट लोल्लट का उत्पत्तिवाद या आरोपवाद

भरत सूत्र के आधार पर रस की व्याख्या करने वाले प्रथम आचार्य भट्ट लोल्लट माने जाते हैं। इनके ग्रंथ का पता नहीं लग सका है। केवल 'अभिनवभारती' में अभिनवगुप्त द्वारा प्रस्तुत इनका मत आगे के आचार्यों के लिए तर्क-वितर्क का कारण रहा है। अभिनवभारती के अनुसार भट्ट लोल्लट का मत है -

- (1) विभावादि का स्थायी भाव से संयोग होने पर रस निष्पत्ति होती है।
- (2) विभाव रस के कारण स्वरूप है। इनके द्वारा स्थायी भाव की उपचित अवस्था का नाम है रस
- (3) यह रस मूलतः अनुकार्य अर्थात् राम आदि ऐतिहासिक पात्रों में ही होता है किंतु उनके रूपादि के अनुसंधान से अनुकर्ता नट में भी विद्यमान होता है।

इस प्रकार भट्ट लोल्लट के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति या पुष्टि है। विद्वानों ने इस सिद्धांत को 'उत्पत्तिवाद' का नाम दिया है। भट्ट लोल्लट के इस सिद्धांत में संयोग का वही अर्थ है जो भरत ने किया है अर्थात् स्थायीभाव के साथ संयोग उत्पत्ति का अर्थ यहाँ वास्तव में अभाव में भाव की कल्पना है। इस सिद्धांत को 'आरोपवाद' भी कहते हैं। अभिनवगुप्त द्वारा उद्धृत अर्थ में आरोप का मतलब होगा नट (अभिनेता) का कुछ समय के लिए अपने को रामादि (नाटक का मूल पात्र) समझना। आरोप में तादात्म्य बहुत कुछ बाध्य रहता है 'अभिमान' में आंतरिक हो जाता है। सामाजिक या दर्शक नट में राम का आरोप कर उसमें रामगत रस की प्रतीति कर लेता है। अर्थात् नट में अनुकार्य की तुल्यता के अनुसंधान के कारण सामाजिक उन्हीं पर अनुकार्य का आरोप कर लेता है और चमत्कृत होता है। भट्ट लोल्लट ने संयोग को तीन अर्थों में स्वीकार किया -

- (1) स्थायी भाव विभाव के साथ उत्पाद्य-उत्पादक संबंध से उत्पन्न होते हैं।
- (2) अनुभाव अनुमाप्य-अनुमापक संबंध से उनकी अनुमिति कराते हैं।
- (3) संचारी भाव पोष्य-पोषक भाव संबंध से उनकी रस-रूप में पुष्टि करते हैं। इस रस की स्थिति यद्यपि मूल रूप में अनुकार्य में ही होती है पर अभिनेता के कौशलपूर्ण अभिनय के कारण दर्शक उसी पर अनुकार्य का आरोप करता है।

भट्ट लोल्लट सद्बुद्धय या सामाजिक के आनंद का निषेध नहीं करते किंतु उनकी धारणा है कि रस का वास्तविक आस्वादन मूल ऐतिहासिक नायक-नायिका ही करते हैं। दर्शक या सामाजिक के हृदय में तो नर-नारी के माध्यम से उनके रस की प्रतीति करके रस उत्पन्न होता है। अर्थात् नायक-नायिका का रस है वास्तविक तथा सामाजिक (दर्शक) का रस है प्रतीति से उत्पन्न रस और इसके माध्यम हैं नट-नटी। सामाजिक नट-नटी में मूल नायक-नायिका का आरोप करके नाटक का आनंद लेता है।

यहाँ पर दो-तीन प्रश्न विचारणीय हैं - (1) नायक-नायिका, उदाहरण के लिए दुष्यंत शकुंतला से क्या आशय है - मूल ऐतिहासिक दुष्यंत शकुंतला या नाटक में वर्णित दुष्यंत शकुंतला (2) नट-नटी का इनसे क्या संबंध है (3) रस की प्रतीति से सामाजिक के हृदय में रस कैसे उत्पन्न होता है?

भट्ट लोल्लट का उत्तर है रस का वास्तविक अनुभव करते हैं मूल नायक-नायिका। प्रश्न उठता है कि नायक-नायिका से आशय क्या है? उस दुष्यंत शकुंतला से जिसे हम 'महाभारत' में पढ़ते हैं या जिसे कालिदास ने उसी रूप में पढ़ा होगा अथवा कालिदास द्वारा प्रस्तुत दुष्यंत शकुंतला से जो महाभारत में प्रस्तुत दुष्यंत शकुंतला से कुछ भिन्न अवश्य हैं। भट्टलोल्लट का आशय निश्चय ही ऐतिहासिक दुष्यंत शकुंतला से है। गहराई में जाएँ तो पता चलता है कि महाभारत के दुष्यंत शकुंतला भी ऐतिहासिक दुष्यंत शकुंतला नहीं है।

भट्ट लोल्लट रस की स्थिति ऐतिहासिक दुष्यंत शकुंतला में ही मानते हैं। प्रेक्षक नट-नटी के अभिनय से उनकी कल्पना कर लेता है और उसे रस की प्राप्ति होती है। एक प्रकार से लोल्लट ने ऐतिहासिक व्यक्तियों में रस की स्थिति मानकर काव्य विषय की महत्ता का प्रतिपादन किया है। लोल्लट के इस मत की सीमा यह है कि वे ऐतिहासिक व्यक्ति और कवि द्वारा अंकित व्यक्तियों का अंतर स्पष्ट नहीं कर सके क्योंकि इसमें कल्पित घटना वाली रचनाओं के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

7.6.2 शंकुक का अनुमितिवाद

रस सूत्र की व्याख्या करने वाले दूसरे आचार्य शंकुक (नवीं शताब्दी) हैं जिन्होंने न्याय दर्शन के अनुमान प्रमाणवाद सिद्धांत के आधार पर अनुमितिवाद की स्थापना की। भट्ट लोल्लट का विरोध करते हुए उन्होंने 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अनुमिति' किया। अर्थात् उन्होंने कहा कि रस उत्पन्न नहीं होता, अनुमित होता है। रस की मूल स्थिति शंकुक भी ऐतिहासिक नायक-नायिका में ही मानते हैं किंतु प्रेक्षक उसको प्रत्यक्ष देखकर आरोप के द्वारा प्राप्त नहीं करते वरन् अनुमान से प्राप्त करते हैं। शंकुक का कहना है कि दूसरों को रस दशा में देखकर पहले तो दर्शक को रस की प्रतीति ही नहीं हो सकती, यदि कुछ अनुभव होता भी है तो जरूरी नहीं कि वह अनुकूल ही हो, प्रतिकूल न हो। उदाहरण के लिए नायक-नायिका की प्रत्यक्ष शृंगार रसानुभूति सहृदय (दर्शक) में संकोच या ईर्ष्या की भावना जाग्रत कर सकती है दूसरी बात यह कि जिन नायक-नायिका को हमने कभी देखा नहीं उनके रसास्वादन की अनुभूति हम कैसे कर सकते हैं? उत्तर दिया जा सकता है कि कल्पना के द्वारा। किंतु 'शंकुक' का यह समाधान नहीं है। शंकुक ने रस की प्रतीति न मानकर चित्र-तुरंग-न्याय के आधार पर इसका अनुमान ही संभव माना है। शंकुक का सिद्धांत इस प्रकार है -

भरत ने स्थायी भाव और रस में कोई अंतर नहीं माना। स्थायी भाव की मूल अनुभूति तो मूल नायक-नायिका को ही होती है रंगमंच पर नट-नटी सफल अभिनय करते हैं तो प्रेक्षक चित्र तुरंग न्याय से उन्हीं को नायक-नायिका समझ लेता है और उनके अभिनय से चमत्कृत होकर मूल भाव का अनुभव करता है जिस प्रकार बच्चा घोड़े के चित्र को देखकर उसे वास्तविक घोड़ा समझ लेता है उसी तरह प्रेक्षक रामादि पात्रों को नट-नटी द्वारा अभिनय देख उन्हें वास्तविक पात्र मान लेता है यह मूल पात्रों की वैसी ही प्रतीति है जैसी बच्चे को घोड़े की प्रतीति होती है। यह अनुमित भाव ही रस है और स्थायी भाव से भिन्न न होकर उसका अनुमित रूप ही है। दर्शनशास्त्र में अनुमान को चित्र-तुरंग-न्याय कहते हैं। शंकुक पर न्यायदर्शन का प्रभाव है।

परवर्ती आचार्यों ने शंकुक के अनुमितिवाद का खंडन यह कहकर किया है कि अनुमान तो वास्तविकता के आधार पर किया जा सकता है कृत्रिम विभावादि के द्वारा इसकी सिद्धि कैसे हो सकती है? शायद शंकुक का ध्यान इस ओर था। उन्होंने अभिनेता के कौशल के सहारे अनुमान की सिद्धि मानी है। साथ ही उन्होंने दूर की उठी हुई धूल को धुँआ समझकर अग्नि के अनुमान की बात कही है। पर रंगमंच के अभिनय को लेकर इस प्रकार के अनुमान की बात नहीं की जा सकती क्योंकि प्रेक्षक पहले ही जानता है कि अभिनय करने वाले पात्र वास्तविक नहीं हैं।

7.6.3 भट्टनायक का भोगवाद

भरत के रससूत्र की व्याख्या करने वाले तीसरे आचार्य भट्टनायक (दसवीं शताब्दी) हैं। इनका सिद्धांत भोगवाद कहलाता है। भट्टनायक ने अपने पूर्ववर्ती सिद्धांतकारों का खंडन करते हुए कहा कि शंकुक ने अनुमान सिद्धांत के द्वारा मूल बात को उलझा दिया है। लोल्लट और शंकुक तथा ध्वनिकार की बात

का खंडन करते हुए उन्होंने कहा कि रस का न तो ज्ञान होता है, न उत्पत्ति, न अभिव्यक्ति। यदि रस दूसरे के भाव के साक्षात्कार अथवा ज्ञान से उत्पन्न होता है तो शोक से शोक की उत्पत्ति होनी चाहिए आनंद की नहीं, और शोक प्राप्त करने के लिए कोई नाटक क्यों देखेगा अथवा काव्य क्यों पढ़ेगा। दूसरी बात यह कि रस यदि, सहृदय के हृदय में ही स्थित है और विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से अभिव्यक्त हो जाता है तो प्रश्न उठता है कि नायक का व्यक्तिगत भाव प्रेक्षक के वैसे ही व्यक्तिगत भाव को कैसे अभिव्यक्त कर सकता है।

भट्टनायक ने रस की स्थिति न तो नायक-नायिका में मानी और न नट-नटी में। रस की स्थिति उन्होंने सीधे सहृदय में मानी। उनके अनुसार काव्य में तीन शक्तियाँ रहती हैं - (1) अभिधा (2) भावकत्व और (3) भोजकत्व। अभिधा वह शक्ति है जिसके द्वारा पाठक या दर्शक काव्य के शब्दार्थ को ग्रहण करता है। दूसरी शक्ति है भावकत्व जिसके द्वारा उसे उस अर्थ का भावन होता है। भाव का भावन होने पर भाव की वैयक्तिकता का नाश होकर साधारणीकरण हो जाता है और भाव विशिष्ट न रहकर साधारण बन जाता है। उदाहरण के लिए दुष्यंत की शकुंतला के प्रति रति पाठक के लिए स्त्री पुरुष मात्र की रति रह जाती है। प्रेक्षक के हृदय में सहज साधारण भाव का अर्थ है - रजोगुण, तमोगुण का लोप होकर सतोगुण का आविर्भाव हो जाता है और पाठक भाव का भोग करता है। भाव का भोग या भोजकत्व व्यापार ही रस है। इस प्रकार रस की अभिव्यक्ति नहीं भोग या भुक्ति होती है। इसीलिए इस सिद्धांत को भोगवाद कहते हैं।

यहाँ भट्टनायक ने भारतीय काव्यशास्त्र के अति महत्वपूर्ण सिद्धांत - साधारणीकरण सिद्धांत - को जन्म दिया। भट्टनायक के मत से 'निष्पत्ति' का अर्थ हुआ भावित होना। विभावादि के साथ संयोग होने से स्थायी भाव भावित होकर रस रूप में परिणत हो जाता है यही रस की निष्पत्ति है। विभावादि भावन क्रिया के कारक हैं और स्थायी भाव भाव्य। अतः 'संयोग' का अर्थ हुआ भावक-भाव्य संबंध। इस प्रकार रस का स्थान है सहृदय का चित्त। डॉ. नगेन्द्र का कहना है - 'कतिपय विद्वानों का मत है कि भट्टनायक रस की स्थिति शब्दार्थ में मानते हैं। आरंभ में हमारी भी यही धारणा थी किंतु इसमें अधिक सार नहीं है। अभिनवभारती आदि में उद्धृत भट्टनायक के मंतव्य के विश्लेषण तथा अभिनव द्वारा उसके खंडन से इस मत का निश्चित निराकरण हो जाता है' (रस सिद्धांत)।

भट्टनायक के मत का मूल्यांकन : भट्टनायक के इस मत की शक्ति यह है कि उन्होंने पहली बार इस दिशा में सफल प्रयत्न किया कि काव्यानंद आत्मा में विश्रांति का नाम है। यह विश्रांति सत्वगुण के उद्रेक की अवस्था में होती है। अभिनवगुप्त के विचार से भट्टनायक के मत की सीमा यह है कि वे रस और रसभोग का अंतर स्पष्ट नहीं कर सके। दूसरा यह कि प्रतीति और भुक्ति का भेद मिथ्या है। भुक्ति भी प्रतीति ही है। अतः रस-प्रतीति का खंडन कर रस-भुक्ति की स्थापना संगत नहीं है। तीसरा यह कि भट्टनायक द्वारा प्रस्तुत भोग के स्वरूप की व्याख्या तात्त्विक नहीं है। अभिनवगुप्त ने कहा कि अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व तीनों की चर्चा ही रस निष्पत्ति के संदर्भ में अप्रासंगिक है।

7.6.4 अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

भरत रस सूत्र के चौथे व्याख्याता हैं अभिनवगुप्त (दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी)। वस्तुतः इनकी 'नाट्य-शास्त्र' पर 'अभिनवभारती' नामक और 'ध्वन्यालोक' पर 'लोचन' नामक टीकाओं के आधार पर ही रस सिद्धांत के अन्य आचार्यों के मतों की स्थापना भी की जा सकी है। अभिनवगुप्त का सिद्धांत अभिव्यक्तिवाद के नाम से प्रसिद्ध है जो प्रायः शैव दर्शन पर आधारित माना जाता है। अभिनव ने भट्टनायक के भोगवाद की आलोचना करते हुए कहा कि उन्होंने तीन शक्तियों की कल्पना व्यर्थ की क्योंकि काव्य में यह कार्य लक्षणा तथा व्यंजना से संपादित हो जाता है। जिस प्रकार धरती में बीज पड़े रहते हैं और अनुकूल स्थिति पाने पर अंकुरित हो जाते हैं उसी प्रकार सहृदय के मन में स्थायी भाव रूपी बीज पड़े रहते हैं जो अनुकूल परिस्थिति पाने पर अभिव्यक्त हो जाते हैं। सहृदय के मन में रति, शोक, निर्वेद आदि स्थायी भाव बीज की तरह पड़े रहते हैं नाटक या कविता देखने या पढ़ने से काव्य-प्रतिपादन के आधार पर अनुकूल परिस्थिति पाकर सहृदय का स्थायी भाव अभिव्यक्त हो जाता है यही अभिव्यक्तिवाद है। अभिनवगुप्त के मत का सारांश इस प्रकार है -

- (1) निर्विघ्न प्रतीति से ग्राह्य भाव ही रस है अर्थात् नाटक अथवा काव्य के उपकरणों द्वारा साधारणीकृत होकर - व्यक्तिगत रागद्वेष आदि की चेतना से मुक्त होकर रति आदि भाव सुखमय प्रतीति के विषय बन जाते हैं। यह सुखमय प्रतीति ही रस है।
- (2) रस की प्रतीति तो सहृदय की आत्मा ही करती है किंतु यह प्रतीति वैयक्तिक न होकर निर्वैयक्तिक होती है।

- (3) साधारणीकरण व्यष्टि के धरातल पर ही न होकर समष्टि के धरातल पर भी होता है।
- (4) स्थायी भाव प्रत्येक सहृदय के चित्त में संस्कार रूप से विद्यमान रहते हैं। संस्कार रूप होने के कारण वे समान भी होते हैं।
- (5) काव्यात्मक शब्द से सहृदय व्यक्ति को सामान्य अर्थबोध से अधिक प्रतीति होती है।
- (6) भोजकत्व की शक्ति तो शब्दार्थ में मानी ही नहीं जा सकती वह तो चित्त की क्रिया है। शब्दार्थ इस क्रिया का प्रेरक मात्र और यह शक्ति उसे व्यंजना से प्राप्त होती है। अतः निष्पत्ति का अर्थ हुआ अभिव्यक्ति और संयोग का अर्थ हुआ व्यंग्य-व्यंजक संबंध।

7.6.5 अभिनवगुप्त के मत का महत्व

भारतीय काव्यशास्त्र में व्यापक समर्थन अभिनवगुप्त के मत को ही मिला। निस्संदेह ही उनका विवेचन अत्यंत प्रौढ़ एवं पुष्ट है। अभिनवगुप्त ने ही सर्वप्रथम रस के सहृदयनिष्ठ रूप की प्रतिष्ठा की। रसास्वाद आनंदमय ही होता है यह स्थापना तो भट्टनायक ने की थी किंतु अभिनवगुप्त ने उसे शैव आनंदवाद का आधार प्रदान कर सर्वथा प्रामाणिक सिद्ध कर दिया। परिणामतः निरानंदवादी जैन आचार्यों ने जितने भी विकल्प प्रस्तुत किए थे वे सब निरर्थक सिद्ध हो गए। अभिनवगुप्त के रस विवेचन की सबसे बड़ी शक्ति है समष्टिगत रस की कल्पना।

अभिनवगुप्त के परवर्ती आचार्यों में महिम भट्ट ने व्यंजनावृत्ति का निषेध किया किंतु महिमभट्ट अभिनवगुप्त की प्रतिभा के सामने टिक नहीं सके। पीछे से मम्मट (13वीं-14वीं शताब्दी) और पंडितराज जगन्नाथ (सत्रहवीं शताब्दी) ने रस प्रसंग में विस्तार से चर्चा की। पंडितराज ने 'रसगंगाधर' नामक ग्रंथ के प्रथम आनन में रस विषयक ग्यारह मतों का उल्लेख एवं विवेचन किया। विशेष बात यह है कि पंडितराज में अभिनवगुप्त के प्रति पूर्ण आस्था है।

पंडितराज के बाद रस चिंतन की परंपरा हिंदी के शैतियुगीन आचार्यों के हाथ में पड़ गई और वे लंबे समय तक उसका वर्णन विवेचन करते रहे किंतु शैतिकालीन आचार्य रस या निष्पत्ति के क्षेत्र में कुछ नया योगदान नहीं दे सके। आधुनिक युग में आकर मराठी और हिंदी में प्राचीन काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के पुनर्विचार का श्रीगणेश हुआ। आधुनिक हिंदी के विचारकों में भारतेन्दु, हरिऔध, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुंदरदास, केशवप्रसाद मिश्र, रामदहिन मिश्र, रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, जयशंकर प्रसाद, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. निर्मला जैन आदि ने रस सिद्धांत की विवेचना की है और अपने-अपने ढंग से महत्व भी प्रदान किया है। हिंदी के ज्यादातर विद्वानों पर भरत और अभिनवगुप्त के रस संबंधी चिंतन का गहरा प्रभाव है, पर साधारणीकरण की स्थिति के संबंध में मौलिक ढंग से सोचने का प्रयत्न किया गया है आचार्य शुक्ल ने इस विषय पर 'साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद' निबंध में विचार किया। आचार्य शुक्ल का दृष्टिकोण लोकमंगल पर आधारित रहा है। उनके रस संबंधी चिंतन के ग्रंथ 'रस-मीमांसा' में भी यही दृष्टि सक्रिय है। आचार्य शुक्ल ने मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में रस की नवीन व्याख्या की और लोक हृदय में अपने हृदय को मिला देना ही रस दशा स्वीकार किया। आचार्य शुक्ल के समय में ही जयशंकर प्रसाद ने 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' में रस की अभिनवगुप्तीय व्याख्याओं का नए ढंग से प्रतिपादन किया। तत्पश्चात् रस संबंधी चिंतन को डॉ. नगेन्द्र ने 'रस-सिद्धांत' बाबू गुलाब राय ने 'सिद्धांत और अध्ययन', डॉ. निर्मला जैन ने 'रस-सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र' डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने 'मध्ययुगीन रस दर्शन और सौंदर्यदृष्टि' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों में विस्तार से प्रस्तुत किया। आचार्य शुक्ल की व्याख्याओं को डॉ. नगेन्द्र ने 'रस-सिद्धांत' में आगे बढ़ाया और डॉ. निर्मला जैन ने भारतीय रस सिद्धांत और पश्चिमी सौंदर्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए रस का आधुनिक दृष्टि से विश्लेषण विवेचन किया। डॉ. नगेन्द्र के 'रस सिद्धांत' की स्थापनाओं को लेकर हिंदी की शुक्लोत्तर समीक्षा में नई बहसों का आरंभ हुआ और रचनाकार तथा आलोचक रस-सिद्धांत की शक्ति और सीमाओं पर विचार करने के लिए विवश हुए।

7.7 रस सिद्धांत की शक्ति और सीमाएँ

रस सिद्धांत में हृदय के राग-तत्व की प्रधानता है और शब्दार्थ के कल्पनात्मक प्रयोग का महत्व भी कम नहीं है। भरत के वस्तुपरक अर्थ में तो उसका महत्व स्पष्ट ही है और भट्टनायक का भावकत्व व्यापार वस्तुतः कला तत्त्व ही है जिसे अभिनवगुप्त ने साधारणीकरण व्यापार में स्वीकार किया है। वास्तव में रस कल्पना काव्यास्वाद की एक समग्र दृष्टि से कल्पना है। रस की परिधि में भाव तत्व,

कल्पना तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और कला तत्त्व का भी अपने-अपने ढंग से समावेश हुआ है। रसाचार्यों ने रस की परिधि के अंतर्गत भाव, भावाभास, रस, रसाभास आदि का विवेचन किया है और रस के साथ 'काव्य का अधिकारी' या 'सहृदय' की चर्चा भी विस्तार से हुई है। वास्तविक रूप में रस आत्मानंद का नहीं काव्यानंद का पर्याय है। रस सिद्धांत के प्रवर्तक भरत की दृष्टि में रस पदार्थ है - 'रस इति कः पदार्थः'। रस-चिंतन को अभिनवगुप्त ने नया आध्यात्मिक रंग दे दिया जो बाद तक चलता रहा। किंतु हिंदी के आधुनिक काव्यशास्त्र में आचार्य शुक्ल ने अभिनवगुप्त की आध्यात्मिक रस व्याख्याओं को अस्वीकार करते हुए रस की वस्तुपरक व्याख्या की। जयशंकर प्रसाद रस की आत्मवादी व्याख्या करते रहे। किंतु इस व्याख्या से अलग हटकर नगेन्द्र और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रस को छायावाद की सौंदर्य चेतना के परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया। हिंदी समीक्षा में रस-सिद्धांत के साथ अभिजात्यवाद, स्वच्छंदतावाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद, सौंदर्यशास्त्र आदि का थोड़ा बहुत तुलनात्मक अध्ययन भी शुरू हुआ और ज्यादातर विद्वानों ने रस-चिंतन को स्वच्छंदतावाद और सौंदर्यवाद के अधिक निकट पाया है।

यथार्थवाद और मार्क्सवाद ने शास्त्रीय रस चिंतन के विरोध का स्वर ऊँचा किया और कहा कि प्रगतिवादी साहित्य आनंदवादी मूल्यों पर आधारित न होकर चेतना विकास के नैतिक मूल्यों पर आधारित होता है। मार्क्सवादियों ने रसवादियों की ब्रह्मास्वादसहोदर दृष्टि की खिल्ली उड़ाई लेकिन साधारणीकरण सिद्धांत का वे निषेध नहीं कर सके। प्रगतिवाद की प्रमुख मान्यता है कि साधारणीकरण सामष्टिगत काव्यचेतना का सिद्धांत है और संप्रेषण सिद्धांत की व्यावहारिक परिणति भी। नयी कविता के युग में रस चिंतन को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया गया। अज्ञेय, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेव नारायण साही, रघुवंश, जगदीश गुप्त, डॉ. नामवर सिंह आदि सभी ने एक स्वर से कहा कि अब रस को काव्य का प्रतिमान नहीं बनाया जा सकता। नयी कविता रस की कविता नहीं है। वह नई परिस्थितियों के विस्फोट की कविता है जिसमें द्वंद्व, तनाव पीड़ा और अवसाद की तीखी अभिव्यक्ति है। अज्ञेय और जगदीश गुप्त आदि ने रस सिद्धांत के विरोध में निम्नलिखित तर्क दिए हैं -

- (1) रस का आधार है - समाहित, अद्वंद्व, किंतु नयी कविता द्वंद्व और असामंजस्य की कविता है।
- (2) नयी कविता वर्तमान पर केंद्रित है जब कि रस की दृष्टि अतीतोन्मुख रहती है। नयी कविता का विषय है क्षण की अनुभूति जब कि रस का आधार है जन्मान्तरगत वासना और स्थायीभाव।
- (3) रस-सिद्धांत में कवि व्यक्तित्व की पूर्ण उपेक्षा है जिसे रसानुभूति के समकक्ष सह अनुभूति की संज्ञा दी जा सकती है। रसानुभूति में व्यक्तित्व और विवेक का परिहार होना आवश्यक है किंतु सहअनुभूति का आस्वादन व्यक्ति चेतना के साथ ही हो सकता है। आत्म-विलयन के आनंद और भावावेग के परिपाक की दृष्टि से रसानुभूति अवश्य ही उत्कृष्ट कोटि की कही जाएगी, परंतु मानवीयता के विचार से सहअनुभूति को उससे उत्कृष्टतर मानना ही विवेक संगत दिखाई देता है।
- (4) नयी कविता की अनुभूति आनंदमयी नहीं है। नयी कविता आकर्षण को नहीं विकर्षण को महत्व देती है। व्यंग्य करना, वैचारिक झटके से झकझोर देना, खिजाना, भीतरी तड़प पर ध्यान दिलाना और सोचने पर मजबूर करना उसका स्वभाव है, वह रिझाने से ज्यादा सताती है और उसमें जीवन के भयानक तथ्यों और दुर्घटनाओं का अंबार लगा होता है।
- (5) नयी कविता, भाव केंद्रित न होकर विचार केंद्रित कविता है। वास्तव में नयी कविता का मूल स्वर रागात्मक नहीं बौद्धिक है। उसमें एक अंतर्निहित आलोचनात्मकता और यथार्थ चित्रण का आग्रह मिलता है।

इस प्रकार नयी कविता के सिद्धांतकार और रचनाकारों ने रस प्रतिमान की प्रासंगिकता को अस्वीकार कर दिया है। रस को काव्यमूल्य इसलिए नहीं माना जा सकता कि आज हम धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' या मोहन राकेश के नाटक 'आंधे अंधेरे' या अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' की या निर्मल वर्मा की कहानी 'परिदे' की अगर रस के प्रतिमान से व्याख्या करेंगे तो न केवल इन कृतियों के साथ ही अन्याय होगा अपितु ऐसी समीक्षा उपहास का कारण भी बनेगी। जाहिर है कि आज मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' का मूल्यांकन रस सिद्धांत के आधार पर नहीं किया जा सकता।

7.8 शब्दावली

विभाव	-	रस के कारण को विभाव कहते हैं। विभाव दो तरह के होते हैं - आलंबन विभाव, और उद्दीपन विभाव।
आलंबन विभाव	-	आलंबन विभाव के दो पक्ष होते हैं - आश्रय और आलंबन।
आश्रय	-	जिसके हृदय में भाव जाग्रत होता है यानी जिसे रसानुभूति होती है, उसे आश्रय कहते हैं।
आलंबन	-	वह पात्र या स्थिति जिसे देखकर आश्रय के मन में भाव जाग्रत होता है उसे आलंबन कहते हैं। उदाहरण के लिए, शकुंतला को देखकर दुष्यंत के मन में शकुंतला के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है। यहाँ दुष्यंत आश्रय है और शकुंतला आलंबन।
उद्दीपन विभाव	-	उद्दीपन विभाव के दो पक्ष होते हैं - बाह्य वातावरण और आलंबन की बाह्य चेष्टाएँ।
अनुभाव	-	आश्रय के शारीरिक विकारों को अनुभाव कहते हैं जैसे क्रोध का भाव उत्पन्न होने पर आश्रय की आँखें लाल हो जाना, आँठ और नथुने फड़कने लगना, जिस व्यक्ति पर क्रोध आ रहा हो उसे मारने के लिए हाथ उठाना। अनुभाव दो तरह के होते हैं - यत्नज और अयत्नज। मारने को हाथ उठाना यत्नज अनुभाव है और आँखें लाल हो जाना अयत्नज अनुभाव। अनुभावों को सात्विक भाव भी कहा जाता है। अनुभावों की संख्या आठ होती है।
संचारी/व्यभिचारी भाव	-	जो भाव क्षण-क्षण में संचरित होकर स्थायी भाव का पोषण करते हैं, उन्हें संचारी भाव कहा जाता है। पहले इनकी संख्या 33 मानी जाती थी, लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान के आधार पर अब इनका संख्या अनगिनत मानी जाती है।
स्थायी भाव	-	जिन भावों को विरोधी अथवा अविरोधी भाव कभी नष्ट नहीं कर पाते उन्हें स्थायी भाव कहते हैं। प्राचीन आचार्यों ने इनकी संख्या नौ मानी है (नौ रसों के नौ स्थायी भाव)। लेकिन अब इनकी संख्या में भी वृद्धि हुई है क्योंकि दसवें, ग्यारहवें रसों की कल्पना की गई है।
सौंदर्य चिंतन	-	कलाकृति अथवा रचना के अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष को समझने और परखने की प्रक्रिया।
अभिमान	-	रस के संदर्भ में अभिमान का अर्थ है अभिनय करते समय नट या नटी का अपने आपको राम-सीता आदि समझ लेना। अतः अभिमान में अनुकार्य से नट का आंतरिक तादात्म्य रहता है।
आरोप	-	नट का अपने में रामादि का आरोप अर्थात् अपने व्यक्तित्व पर उन पात्रों के व्यक्तित्व का आरोप जिनका वह अभिनय कर रहा है। आरोप में नट का अनुकार्य से तादात्म्य बहुत कुछ बाह्य ही होता है।
निर्व्यक्तिक हो जाना	-	रस के संदर्भ में इसका अर्थ है - सामाजिक या प्रेक्षक में सत्व का उद्रेक होने से अपने-पराए का भेद समाप्त हो जाना अथवा इस भेद से मुक्त हो जाना। इस स्थिति को भाव का वैयक्तिक न रहकर निर्व्यक्तिक हो जाना भी कहा जाता है। वैयक्तिक भाव का निर्व्यक्तिक हो जाना लोकदशा को प्राप्त हो जाना है।
अनुकार्य	-	वे पात्र जिनका नाटक के माध्यम से अनुकरण किया जा रहा है अर्थात् राम-सीता या दुष्यंत-शकुंतला आदि।
उत्पाद्य-उत्पादक संबंध	-	रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया में विभाव से स्थायी भाव का संबंध उत्पाद्य-उत्पादक संबंध कहा गया है।
पोष्य-पोषक संबंध	-	संचारी भाव स्थायी भाव की पुष्टि करते हैं। अतः रस प्रक्रिया में स्थायी तथा संचारी भाव का संबंध पोष्य-पोषक संबंध कहलाता है।

भावकत्व	-	अपने पराए की भेदबुद्धि से मुक्त हो जाना।
भावन	-	भावकत्व व्यापार का साधारणीकरण। स्थायीभाव के भावन का अर्थ है - भावकत्व व्यापार के फलस्वरूप भाव की कल्पनात्मक प्रतीति।
व्यष्टि	-	वैयक्तिक संसर्ग या व्यक्तिगत संबंध।
समष्टि	-	भाव का वैयक्तिक संसर्ग से मुक्त होकर सबका हो जाना।
व्यंग्य-व्यंजक संबंध	-	विभावादि व्यंजक है और रस रूप में परिणत स्थायी भाव व्यंग्य है। अतः अभिनवगुप्त ने निष्पत्ति का अर्थ किया अभिव्यक्ति और संयोग का अर्थ किया 'व्यंग्य-व्यंजक संबंध'। व्यंग्य का आधार है व्यंजनाशक्ति।
निरानंद	-	आनंदरहित।

रस की परिभाषा, स्वरूप और रस निष्पत्ति

7.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. 'रस' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए रस चिंतन की परंपरा का उल्लेख कीजिए।
2. रस की परिभाषा दीजिए।
3. रस का स्वरूप स्पष्ट करते हुए करुण रस के आस्वाद पर विचार कीजिए।
4. भट्ट लोल्लट के रस निष्पत्ति संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।
5. रस निष्पत्ति में भट्टनायक के मत का महत्व निर्धारित कीजिए।
6. अभिनवगुप्त के रस-निष्पत्ति संबंधी चिंतन पर विचार कीजिए।
7. रस सिद्धांत की शक्ति और सीमाओं का उल्लेख करते हुए बताइए कि आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन के लिए यह किस हद तक उपयुक्त प्रतिमान सिद्ध हो सकता है।